रुद्रग्रन्थमाला का पंचम पुष्प–

भारतीय इतिहास और वेद
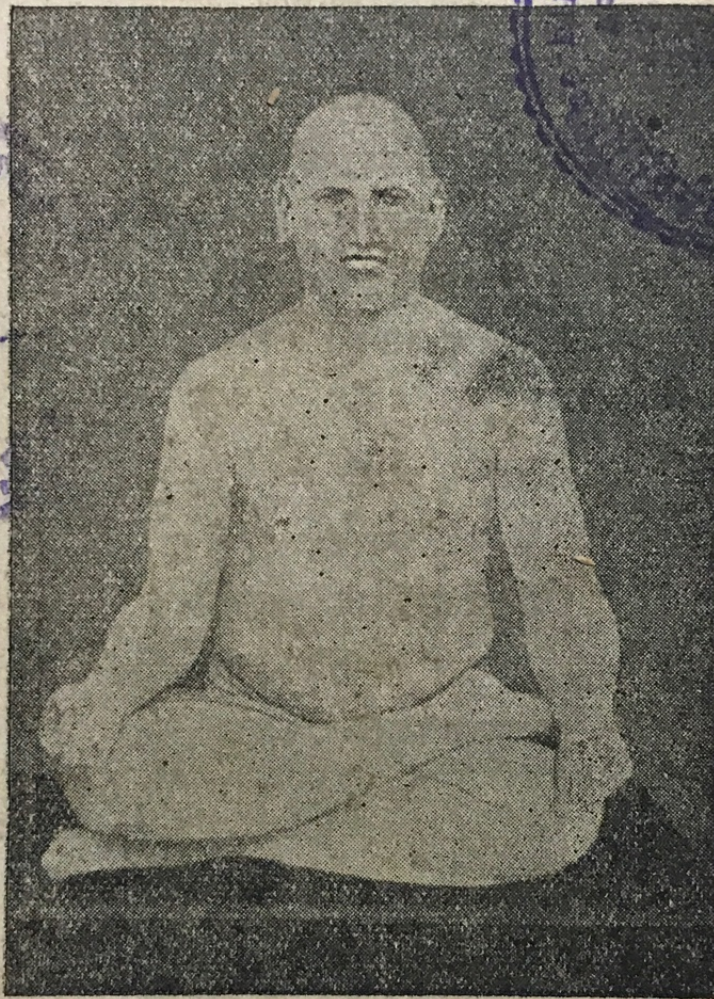
महर्षि दयानन्द सरस्वती की पुण्यस्मृति में समर्पित

लेखक :

अनुसन्धानकर्त्ता शिवपूजनसिंह कुशवाहा 'पथिक'

सिद्धान्तशास्त्री साहित्यालङ्कार गौरा, सारण (बिहार)

प्रकाशक :

जयदेव ब्रदर्स, आत्माराम पथ, बड़ोदा

संस्करण दयानन्दाब्द १... मू० ...
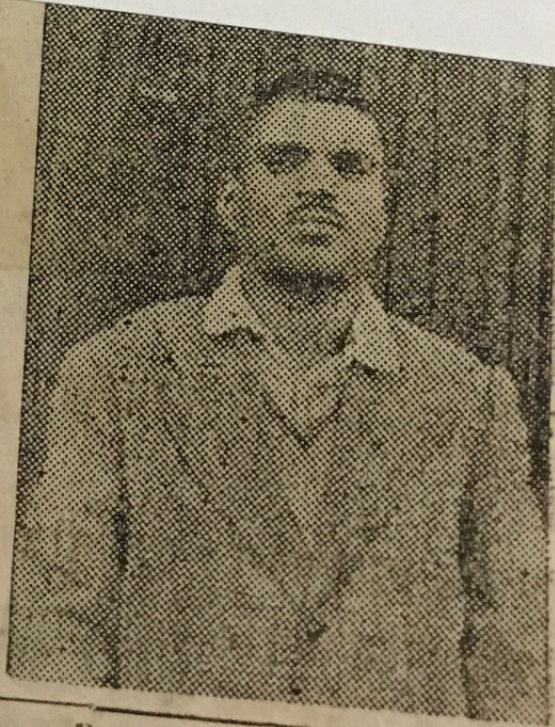
जयदेव ब्रदर्स के प्रबन्ध से जागृति मुद्रणालय में
मुद्रित १०००, २७ अगस्त १९५०, श्रावणी पूर्णिमा,

ओ३म्

भारतीय इतिहास और वेद

डॉ. राजबली पाण्डेय एम. ए., डी. लिट्. प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति विभाग, बनारस हिन्दूविश्वविद्यालय ने "भारतीय इतिहास की भूमिका" (प्रथमभाग) 'प्राचीन भारत, नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है जो सन् १९४९ ई. में मलहोत्रा ब्रदर्स ६०, दरियागंज, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है, मूल्य पांच रु. है, पृष्ठ संख्या ३५५ है।

इस पुस्तक के लिखने में सचमुच ही पाण्डेय जी ने अत्यन्त परिश्रम किया है और इससे इतिहास के विद्यार्थी को नवीन बातें प्राप्त हो सकती हैं। हमें भारतीय इतिहास से प्रेम है, अतएव जब हमने इस ग्रन्थ का अध्ययन किया तो कहीं कहीं पाण्डेय जी के सिद्धान्त से असहमत होना पड़ा। आशा है पाण्डेय जी इस पर पुनः विचार करेंगे।

आप पृष्ठ ४८, ४९ में सुदास और पाञ्चाल का प्राधान्य वर्णन करते हुए लिखते हैं:—

"...सुदास ने पंजाब में घुस कर इस संघ का सामना किया। युद्ध परुष्णी (रावी) के किनारे हुआ। इसमें संघ पराजित होकर टूट गया और सुदास की धाक जम गई। इस 'दाशराज्ञ-युद्ध' का वर्णन ऋग्वेद और महाभारत दोनों में मिलता है।"

समीक्षा—पाण्डेय जी का कथन है कि 'दाशराज्ञ-युद्ध' का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है, पर आपने कोई प्रमाण नहीं दिया कि ऋग्वेद के किस स्थल पर यह वर्णन आया है। वेद में तो किसी भी

प्रकार का अनित्य इतिहास नहीं है। पता नहीं आप किस आधार पर 'दाशराज्ञ युद्ध' का वर्णन ऋग्वेद से प्रदर्शित करते हैं।

रायबहादुर श्रीचिन्तामणि विनायकवैद्य, एम. ए., एल. एल. बी. ने भी 'दाशराज्ञ युद्ध' का वर्णन किया है। १

इन लोगों ने जिस सुदास, यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु, पुरु आदि राजाओं का नाम लिखा है वेद में वह ऐतिहासिक पुरुषों का नाम नहीं है। वेद में कोई रूढ़ शब्द नहीं है वरन् यौगिक शब्द हैं। राजा सुदास अयोध्या के महाराज ऋतुपर्ण के पुत्र थे। यथा—"सुदासः क्षत्रियः ऋतुपर्णस्य पुत्रः" (महाभारत वर्णानुक्रमणी, पृष्ठ १७४) पुनः "ऋतुपर्णो नलसखो योऽश्वविद्यामयान्नलात्। दत्वाक्षहृद्य चास्मै सर्वकामस्तु तत्सुतः। ततःसुदासः..........."

(भागवत स्कन्ध ९ अ. ९ श्लो १७, १८). २

क्या हम पाण्डेय जी से पूछ सकते हैं कि वेद सुदास के पश्चात बने? क्योंकि किसी का इतिहास उसके जन्म पश्चात् ही लिखा जाता है।

यदु, तुर्वश आदि नाम राजाओं के नहीं है वरन् इसका अर्थ कुछ और ही है। ३ वेदों में किसी भी प्रकार के इतिहास नहीं हैं। ४

---

१. देखो—'महाभारत मीमांसा' पृष्ठ १४३ (सन् १९२० ई० संस्करण)

२. तुलना करो, श्री. टी० आ० कृष्णाचार्य मुद्रित महाभारत, आदिपर्व, अ० १८, श्लोक ४९.

३. देखो—मासिक पत्रिका 'वेदवाणी' काशी, वर्ष २, कार्त्तिक २००६ वि०, अङ्क २, पृष्ठ ३२ में प्रकाशित मेरा वेदों में कथित राजाओं के नामों का रहस्य, शीर्षक लेख तथा 'वैदिक सम्पत्ति' द्वितीय संस्करण पृष्ठ ६४.

४. देखो—पं० प्रियरत्नजी आर्षकृत 'वेद में इतिहास नहीं', पं० शिवशङ्कर शर्मा काव्यतीर्थ कृत 'वैदिक इतिहासार्थ निर्णय', प० चमूपति एम्० ए० कृत 'यास्कयुग' पुस्तकें। —लेखक

श्री सायणाचार्य से लगभग एक सहस्र वर्ष प्राचीन ऋग्भाष्यकार आचार्य स्कन्दस्वामी अपनी निरुक्त की टीका भाग २ पृ. ७८ पर लिखते हैं—

'एवमाख्यानस्वरूपाणां मन्त्राणां यजमाने नित्येषु च पदार्थेषु योजना कर्त्तव्या। एष शास्त्रे सिद्धान्तः।...औपचारिको मन्त्रेष्वाख्यान-समयः। परमार्थे नित्यपक्ष इति सिद्धम्'।

अर्थात्—इसी प्रकार जिन जिन मंत्रों में आख्यान=इतिहास का वर्णन किया गया है, उन सब मंत्रों की यजमानपरक अथवा नित्य पदार्थों में योजना कर लेना चाहिए। यह निरुक्त शास्त्र का सिद्धान्त है....मंत्रों में आख्यान (इतिहास) का सिद्धान्त औपचारिक अर्थात् गौण है। वास्तव में तो नित्य पक्ष ही मन्त्रों का विषय है।

वेदक्रान्तदर्शी महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं—'ब्राह्मण पुस्तकों में बहुत से ऋषि महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं और इतिहास जिसका हो, उसके जन्म के पश्चात् लिखा जाता है। वह ग्रन्थ भी उसके जन्म के पश्चात् होता है। वेदों में किसी का इतिहास नहीं, किन्तु विशेष जिस जिस शब्द से विद्या का बोध होवे, उस उस शब्द का प्रयोग किया है, किसी मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसङ्ग वेदों में नहीं।"[५] अतएव पाण्डेयजी का यह सिद्धान्त उनकी वेदानभिज्ञता प्रकट करता है।

पाण्डेयजी चौथे अध्याय में लिखते ह—'श्रद्धालु हिन्दू मानते हैं कि वेद अपौरुषेय हैं और उसका कोई कर्त्ता नहीं हैं; उनका साक्षात्कार ऋषियों को हुआ था, जिसके नाम वैदिक सूक्तों के साथ लगे हुए हैं।'

समीक्षा—आपका कथन कि श्रद्धालु हिन्दू ही वेद को अपौरुषेय मानते हैं, ठीक नहीं, वरन् ब्रह्मा से लेकर जैमिनीपर्यन्त जितने ऋषि

---

५. देखो—'सत्यार्थ प्रकाश' सप्तम समुल्लास (दयानन्द ग्रन्थमाला, शताब्दी संस्करण, प्रथम भाग, पृष्ठ ३१८, ३१९)

हुए हैं सभी वेदों को अपौरुषेय मानते हैं। जिन हरिवर्षीय पण्डितों के ऊपर आपकी विशेष श्रद्धा है वे भी वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं। देखिए—पादरी मारिस फिलिप्स लिखते हैं:—

'हमारा यह परिणाम अटल और निर्विवाद है कि भारतवर्ष में धार्मिक विचार की उन्नति निरन्तर नीचे की ओर रही है न कि ऊपर की ओर अर्थात् अवनति वा अधोगति हुई है न कि उन्नति वा विकास, अतः हम यह परिणाम निकालने पर बाधित हैं (जब तक इसका उलटा सिद्ध नहीं होता) कि वैदिक आर्यों के अधिक पवित्र और उच्च विचार प्रारम्भिक ईश्वरीयज्ञान के परिणाम थे। ६

कैगी साहब अपने सम्पादित 'ऋग्वेद' के पृष्ठ २५ पर लिखते हैं—

"उक्त मंत्र अपने संग्रहकाल में—उस समय भी उनके कुछ अंश लोगों को समझ में नहीं आते थे—प्राचीन और ईश्वरीयज्ञान समझे जाते और इसी प्रकार सब प्रकार के मानव आक्षेपों से उनकी रक्षा की जाती थी।" इसी प्रकार इक्कीस पाश्चात्य विद्वान् एक स्वर से वेदों को ईश्वरीयज्ञान मानते हैं। ७

---

६ "फिलिप्सकृत टीचिंग्स आफदी वेदाज़" पृष्ठ २३१

७ देखो—मासिक पत्र "क्षात्र धर्म सन्देश" जयपुर वर्ष ३, अङ्क २, ३, ४, ५, ६, ७ में प्रकाशित मेरा "पाश्चात्यों की दृष्टि में वेद अपौरुषेय" शीर्षक लेख। —लेखक

विशेष अध्ययन के लिए देखिए—प० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति, सिद्धान्तालङ्कार कृत अंग्रेज़ी पुस्तक दि ग्लोरी आफ़ दि वेदाज़ (शारदा मंदिर लि०, नई सड़क, देहली से प्रकाशित) पं० शिव शङ्कर शर्मा काव्यतीर्थ कृत "वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है" पुस्तक, प्रो० बालकृष्ण जी. एम. ए. पी. एच. डी. कृत "ईश्वरीय ज्ञान वेद" पुस्तक; प० रघुनन्दन शर्मा साहित्य भूषण कृत "वैदिक सम्पत्ति" ग्रन्थ—लेखक।

पाण्डेय जी ऋषियों के विषय में लिखते हैं—"सच बात तो यह है कि वैदिक मन्त्रों की रचना करनेवाले ऋषियों (प्राचीन कवियों) को ही मन्त्रद्रष्टा कहा गया है।" ...

समीक्षा—पाण्डे जी का यह सिद्धान्त भी अटकपञ्जू ही है। आपको कम से कम अपने कथन की पुष्टि में प्रमाण तो देना था, यह तर्कयुग है। बिना प्रमाण आपकी बात कोई भी मानने के लिए उद्यत नहीं है। वास्तव में मन्त्र द्रष्टा ऋषि वेद-मन्त्रों के रचयिता नहीं हैं। देखिये, वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं—

"ऋषयो (मन्त्रदृष्टयः)...मन्त्रान्सम्प्रादुः। निरु० [१।८०] जिस जिस मन्त्रार्थ का दर्शन जिस जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था और दूसरों को पढ़ाया भी इसलिए अद्यावधि उस उस मन्त्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है। जो कोई ऋषियों को मन्त्रकर्त्ता बतलावें उनको मिथ्यावादी समझें। वे तो मन्त्रों के अर्थ प्रकाशक है"। ८

महर्षि दयानन्द जी के शब्दों में पाण्डेय जी मिथ्यावादी हुए। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने जो कुछ लिखा है अक्षरशः सत्य है। इसकी पुष्टि अन्यान्य प्रमाणोंसे होती है।

यजुर्वेद के सातवें अध्याय में ४६ वां मन्त्र है—

ब्राह्मणमद्य विदेयम्पितृमन्तम्पैतृमत्यमृषिमार्षेयम्।

यहाँ ऋषि पद के व्याख्यान में श्री उव्वटाचार्य लिखते हैं:—
"ऋषिर्मन्त्राणां व्याख्याता"=अर्थात् ऋषि, मन्त्रों का व्याख्याता हैं।

---

८ सत्यार्थ-प्रकाश, सप्तम समुल्लास पृष्ठ २१७, २१८
(दयानन्द ग्रन्थमाला, शताब्दी संस्करण)

महर्षि दयानन्दजी भी यही लिखते हैं कि "(ऋषिम्) वेदार्थ विज्ञापकम्" वेदार्थ विज्ञान करानेवाला ऋषि।

बौधायन धर्म सूत्र २।६।६६ में ऋषि पद मिलता है, उसकी व्याख्या में श्री गोविन्द स्वामी लिखते हैं—ऋषिर्मन्त्रार्थज्ञः'=ऋषि मन्त्रार्थ का जानने वाला होता है।

मनुस्मृति प्रथमाध्याय के प्रथम श्लोक में—'महर्षयः' पद के भाष्य में 'मेधातिथि' लिखते हैं—'ऋषिर्वेदः। तदध्ययन विज्ञान तदर्थानुष्ठानातिशययोगात् पुरुषेऽप्यृषिशब्दः।' ९

अर्थात् वेद के अध्ययन, विज्ञान; अर्थानुष्ठान आदि के कारण पुरुष में भी ऋषि शब्द का प्रयोग होता है।

अब हम कुछ ऐसे मंत्रों को प्रस्तुत करते हैं, जो ऋग्वेद में ही एक से अधिक बार आए हैं, और उनके ऋषिभी दोनों स्थानों पर भिन्न भिन्न हैं। यथा:—

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः॥

यह मंत्र ऋग्वेद १।१३।९ में है और पुनः ५।५।८ में भी है। प्रथम मण्डल में इसका ऋषि 'मेधातिथि काण्व' है और पंचम मण्डल में वसुश्रुत आत्रेय ऋषि है।

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे॥

यह ऋग्वेद के तीसरे मण्डल में अनेक बार आता है। एक स्थान (३।१।२३) पर इसका ऋषि गाथिन विश्वामित्र है, और दूसरे स्थान (३।१५।७) पर उत्कील कात्य है। (३।५।११; ३।६।११

---

९ देखो—पण्डित प्रवर श्री युधिष्ठिरजी मीमांसक, अजमेर कृत 'क्या ऋषि वेद मंत्र के रचयिता थे?' नामक पुस्तिका—लेखक।

३।७।११) इन तीनों स्थानों पर ऋषि विश्वामित्र है। (३।२२।५) में ऋषि गाथी है। तो ३।२३।५ में देवश्रवा, और देवावात भरत कुलोत्पन्न।

(देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी) ऋषि हैं। सामवेद ५।१।१।८।४ में यह मंत्र है, वहाँ भी ऋषि विश्वामित्र हैं।

विशेष प्रमाण के लिए पाठक ब्लूमफील्डरचित "ऋग्वेद रैपटिशिन्स" के द्वितीयभाग के आरम्भिक पृष्ठों को देखें।

ये थोड़े से दोनों प्रकार के उदाहरण यहाँ सम्मुख रक्खे जारहे हैं। ऐसी स्थिति में ऋषिका अर्थ 'मन्त्रों के रचना करनेवाले' यह कैसे सङ्गत होगा ?

ऋग्वेद ९।६६ सूक्त में मन्त्र केवल तीस और ऋषि हैं पूरे सौ=शत वैखानसाः (अनुक्रमणिका) इसमें एक एक पाद भी तो प्रत्येक ऋषि के हिस्से में नहीं आता। यदि ऋषि का अर्थ शास्त्रानुकूल द्रष्टा मानले, तो कोई आपत्ति ही नहीं।

अनेक मंत्रों के ऋषि जड़पदार्थ वा तिर्यकप्राणी भी हैं यथा ऋग्वेद ३ मण्डल के ३३ सूक्त की ४,६,८,१० ऋचाओं की ऋषि नदी हैं। ऋग्वेद १० मण्डल १०८ सूक्त की अनेक ऋचाओं की ऋषि 'देवशुनी सरमा' है। यदि ऋषिओं का मन्त्र रचयिता माना जावे तो यह कैसे सम्भव हो सकता है। नदी, शुनी के द्वारा मन्त्ररचना असंभव है। ऋषि को विशिष्ट विषय मानने से समाधान हो सकता है ऋग्वेदमें ऐसे भी बहुत सूक्त हैं जिनका वही ऋषि और वही देवता है। इसके लिए देखिए—ऋग्वेद १० मण्डल, ४८-५०, ८१-८४, १२३, १५९ आदि सूक्त। और उनमें अनेक ऐसे सूक्त हैं जिनके ऋषि केवल भावना पर अवलम्बित हैं, देखिये ऋग्वेद मण्डल, १० सूक्त १२५, १५१ आदि। यह बात भी ऋषियों को मन्त्रों के रचयिता मानने के पक्ष में अनुकूल नहीं होती।

आशा है श्री पाण्डेय जी इस उलझन को सुलझाने का प्रयत्न करेंगे।

पाण्डेयजी पृष्ठ ५४ में लिखते हैं–' वेदों का अन्तिम सङ्कलन सम्पादन और वर्गीकरण महर्षि वेदव्यास ने किया जो महाभारत युद्ध के समय जीवित थे। उनके वर्गीकरण के अनुसार (१) ऋक् (२) साम (३) यजुष् को मिलाकर ' त्रयी ' तथा (४) अथर्ववेद और (५) इतिहास को लेकर पाँच वेद हैं। "

समीक्षा–पाण्डेय जी का यह सिद्धान्त भ्रमपूर्ण है देखिए-वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं–'....जो कोई यह कहते हैं कि वेदों को व्यासजी ने इकठे किए, यह बात झूठी है। क्यों कि व्यास के पिता पितामह प्रपितामह, पराशर, शक्ति वसिष्ठ और ब्रह्मा आदि ने भी चारों वेद पढ़े थे ' (सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास)।

पुनः–'...एवमेव व्यासेनर्षिभिश्च वेदा रचिता इत्याद्यपि मिथ्यैवास्तीति मन्यताम्'...(ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, वेदोत्पत्ति विषयः)

अर्थात्–उसी प्रकार व्यास जी ने चारों वेदों की संहिताओं का संग्रह किया है इत्यादि इतिहासों को मिथ्या ही जानना चाहिए।

पुनः—'इति मनुसाक्ष्यत्वात्, अग्न्यादीनां सकाशाद् ब्रह्मापि वेदानामध्ययनं चक्रेऽन्येषां व्यासादीनां तु का कथा ' (वही)

अर्थात्—इसमें मनुके श्लोकों की साक्षी है कि पूर्वोक्त अग्नि, वायु, रवि, अङ्गिरा से ब्रह्माजी ने वेदों को पढ़ाथा। जब ब्रह्माजी ने वेदों का पढ़ा था तो व्यासादि हमलोगों की कथा क्या ही कहनी है।'

वायु पुराण प्रथम अध्याय में लिखा है कि वसिष्ठ का पौत्र जातूकर्ण्य। उसी से व्यासने वेदाध्ययन किया।

बृहदारण्यकोपनिषद् २।६।३। और ४।६।३ में लिखा है–'पाराशर्यो जातूकर्ण्यात् ' अर्थात् व्यासने जातूकर्ण्यसे विद्या सीखी।

महर्षि पतञ्जलि के योगदर्शन पर श्री द्वैपायन व्यास का भाष्य प्रसिद्ध है। महर्षि पतञ्जलि के समय में महर्षि वेदव्यास के सैकड़ों वर्ष पूर्व चारों वेद ११२७ शाखाओं सहित विद्यमान थे। महर्षि पतञ्जलि अपने 'महाभाष्य' व्याकरण में लिखते हैं—

'महान् शब्दस्य प्रयोग-विषयः। सप्त-द्वीपा वसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्याः बहुधाः भिन्नाः। एकशतमध्वर्यु-शाखाः। सहस्रवर्त्मा सामवेदः। एकविंशतिधा वाह्वृच्यम्। नवधा आथर्वणो वेदः। वाकोवाक्यमितिहासः पुराण वैद्यकमित्येवाञ्छब्दस्य प्रयोगः (महाभाष्य १-१)

'चत्वारि श्रृङ्गा त्रयोऽस्य पादा...' ऋग्वेद (४।५८।३,) यजुर्वेद (१७।९१) इस पर श्री महर्षियास्क लिखते हैं: 'चत्वारि श्रृङ्गेति वेदा वा एत उक्ताः' (निरुक्त १३।७) यहाँ इस मंत्र से यास्कने चारों वेदों का ग्रहण किया है। रामायणकाल महाभारत से भी प्राचीन माना जाता है। १० दाशरथि राम के राज्य का वर्णन करते हुए महाभारत द्रोणपर्व अ० ५१ में लिखा है—

वेदेश्चतुर्भिः सुप्रीताः प्राप्नुवन्ति दिवौकसः।
हव्यं कव्यं च विविध निष्पूर्तं हुतमेवच ॥ २२ ॥

अर्थात् राम के राज्य में चारों वेद पढ़े विद्वान् थे। अतएव-इन प्रमाणों से पाण्डेयजी का सिद्धान्त नितान्त अशुद्ध और भ्रमपूर्ण है।

वेद अनादि और नित्य है। वेद व्यास के पहिले ही चारों संहिताएँ वर्तमान थीं।

पाण्डेयजी—पृष्ठ ५६ में लिखते हैं कि 'अथर्ववेद में बीतिहव्यों के गणतन्त्र का उल्लेख है जो हैहयों की एक शाखामें थे।'

---

१० देखो—प्रो० बलदेव उपाध्याय, एम्. ए., साहित्याचार्य, कृत 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' प्रथम संस्करण पृष्ठ ६३ से ६७ तक।

समीक्षा—आपने यहाँ अथर्ववेद का पूरा प्रमाण नहीं दिया, प्रमाण दिए होते तो उस स्थल पर विचार किया जाता। हम ऊपर अनेक प्रमाणों से प्रदर्शित कर चुके हैं कि वेदों में किसी प्रकार अनित्य इतिहास नहीं है।

पाण्डेयजी—पृष्ठ ५८ में लिखते हैं—'घोषा, लोपामुद्रा, विश्ववारा आदि वैदिक स्त्रियों की गिनती ऋषियों में थी और उन्होंने वैदिक सूक्तों की रचना की थी।"

समीक्षा—वैदिक स्त्रियों की गिनती तो ऋषिकाओं में थी यह सिद्धान्त तो ठीक है पर 'वैदिक सूक्तों की रचना का सिद्धान्त सर्वथा भ्रमपूर्ण है। जो उत्तर मैंने मंत्र रचयिता 'ऋषियों के लिये दिया है वही उत्तर यहाँ भी समझिए।

पाण्डेयजी—आर्यों के 'भोजन और पेय' का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि—'अनाज, शाक, फल, दूध, घी, मांस आदि पदार्थ भोजन में शामिल थे। गाय अपने आर्थिक महत्त्व के कारण वेदों में 'न मारने योग्य' (अघ्न्या) कही गई है, किन्तु विवाह, आदरणीय अतिथि के आगमन आदि अवसरों पर मांस के लिये उसका बध होता था। बछड़ा, बछिया बांझ गाय (बेहत्) अजा (बकरी) भेड़ आदि जानवर मांस के लिए मारे जाते थे।'

समीक्षा—यदि यह बात कोई विधर्मी यवन, ईसाई आदि लिखता तो हमें दुःख व आश्चर्य न होता, पर आर्यों पर गोमांस भक्षण की बात एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण की लेखनी से लिखी गई है इससे हमें दुःख और आश्चर्य होता है।

आपको उचित था कि कोई वेद-मंत्र देकर उसका अर्थ कर देते कि यहाँ गोमांस खाने व अतिथि-आगमन के समय गाय, बछड़े मारने

का विधान है, पर आपने पाश्चात्यों का अनुकरण किया है। हम आपको आह्वान (चैलेंज) करते हैं कि आप चारों वेद संहिताओं से गोमांस तो अलग रहा, मांस भक्षण ही सिद्ध कर दें।

वेदमें तो गोमांस भक्षण के विरुद्ध अनेकों प्रमाण हैं। ११

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि (अथर्व० ८।६।२३)

अर्थ—जो आम मांस (कच्चे घर में पके तथा गौ के मांस) को खाते हैं। जो पौरुषेय क्रवि (पितृशक्ति की हत्या से प्राप्त मांस) को खाते हैं। गर्भों अण्डों तथा नवजात छोटे छोटे पशु पक्षियों को खाते हैं इस प्रकार के केशवों १२ का हम यहाँ से नाश करते हैं।

यहाँ वेद ने स्पष्ट मांस भक्षण का खण्डन किया है।

पाण्डेयजी पृष्ठ ६३ में लिखते हैं—'मृत्यु के बाद पुनर्जन्म की स्पष्ट कल्पना वैदिक काल के प्रारम्भ में नहीं हो पायी थी।....पीछे परलोक के साथ पुनर्जन्म का सिद्धान्त भी जोड़ दिया गया, जिसके अनुसार जीव बार-बार जन्म लेता और मरता है।...'

समीक्षा—यह लिखना कि 'पुनर्जन्म की स्पष्ट कल्पना वैदिक काल के प्रारम्भ में नहीं हो पायी थी' वैदिक साहित्य से अनभिज्ञता

---

११. देखो—मासिक पत्र 'वैदिक धर्म' अगस्त सन् १९४५ ई० में प्रकाशित मेरा 'आर्यों पर गोमांस भक्षण का दोषारोपण' शीर्षक लेख। —लेखक

१२ केशवः—के=जले शेत इति केशः=जलजन्तुः।

केशान्=जलजन्तून् वान्ति=आप्नुवन्ति भक्षणाय ते केशवः। जल में निवास करने वाले जन्तु केश कहलाते हैं, उन जलजन्तु मत्स्यादि के खाने वाले 'केशव' कहलाते हैं। —लेखक

प्रकट करता है। ऋग्वेद अध्ययन करने से इस विषय में उनको प्रमाण मिलेंगे।

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद्ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः॥

(ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १६४ मं० ३०)

अर्थ—परमेश्वर (पस्त्यानाम्) शरीरों के (मध्ये) बीच में रहने वाले (ध्रुवम्) अविनाशी (तुरगातु) शीघ्रगतिवाले (जीवमेजत्) जीव को गति देता हुआ तथा (अनत्) प्राणशक्ति संपन्न करता हुआ (शये) रहता है। (मृतस्य अमर्त्यः) मृत का न मरने वाला जीवः (स्वधाभिः) अपने गुण तथा पाप कर्मों के कारण (मर्त्येन सयोनिः) मरणधर्मा शरीर के साथ समान स्थान वाला होकर जगत् में (आचरति) बार बार आता है।

आहाराः विविधाः भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः। मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा" (निरुक्त परिशिष्ट ६ ख० १४ अ०)

बच्चों का स्वभावतः माता के स्तन से दूध पीने की विधि से परिचित होना इस बात का प्रमाण है कि बालक का यह पहला जन्म नहीं परन्तु उसका पूर्व जन्म से इसका संस्कार है।

श्रीमान् पाण्डेयजी की फिर भी प्रशंसा करते हैं कि उन्होंने पुस्तक-प्रणयन में अत्यन्त परिश्रम, अनुशीलन, स्वाध्याय तथा नूतन अन्वेषण किए हैं। परन्तु 'वैदिक काल' का ज्ञान आपको नहीं है। आपने हरिवर्षीय पण्डितों का अनुगमन किया है जो अत्यन्त ही शोचनीय है और इसमें संशोधन की आवश्यकता है। यदि 'वैदिक काल' पर पाण्डेयजी संशोधन करा दें तो यह पुस्तक भावी संतान के लिये अत्यन्त उपयोगी होगी। आशा है पाण्डेयजी इस पर पुनः विचार करेंगे। जिस पत्र, पत्रिका में आप इसका उत्तर दें उसकी एक प्रति हमारे पास अवश्य भिजवादें।

———

विज्ञापन-रुद्रग्रन्थमाला

लेखक की प्रकाशित अन्य पुस्तक पर सम्मतियाँ :-

(१) अथर्ववेदकी प्राचीनता—"अथर्ववेदकी प्राचीनता नामक पुस्तिका अथर्ववेद विषयक समस्त भ्रान्तियों का निराकरण कर देती है' यही इस पुस्तिका की विशेषता है"—(आचार्य) **नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ** (चैत्र कृ. ३ संवत २००६ लेखक के नाम पत्र)

"आपकी पुस्तक भी मिली, बहुत अच्छी खोज की गई है। प्रत्येक वेद प्रेमी को अपनानी चाहिए।"—शास्त्रार्थ-**महारथी पं. बिहारी-लालजी शास्त्री, काव्यतीर्थ** (दिनाङ्क १०-३-१९५० के पत्र में)

"आपकी लिखी '**अथर्ववेद की प्राचीनता**' पुस्तिका मिली। यह पुस्तिका बहुत खोजपूर्ण उपादेय और आवश्यक है। आपका परिश्रम सराहनीय है। आपने छोटीसी पुस्तिका में इतनी सामग्री दे दी है कि जो बहुत बड़ी पुस्तकों में भी नहीं मिल सकती"—शास्त्रार्थ-**केसरी ठा० अमरसिंहजी 'आर्यपथिक'**(दिनाङ्क १३-४-१९५०लेखक के नाम पत्र)

"...पुस्तक अच्छी है। उसके जिस अंश में अथर्व वेद की प्राचीनता सिद्ध की गई है, वह अवश्य प्रशंसनीय है। हम तो अथर्व वेद को केवल प्राचीन ही नहीं, अनादि, अपौरुषेय मानते हैं। १० वें पृष्ठ से २५ वें पृष्ठ तक की आलोचना से हम पूर्णतः सहमत नहीं, उससे हमारा मत भेद है। फिर भी आर्यसमाजी विचार रखनेवालों के लिए पुस्तक द्रष्टव्य है"—

पं. दुर्गादत्त त्रिपाठी सम्पादक "सिद्धान्त" साप्ताहिक पत्र काशी (मिति आषाढ कृष्ण १२ सोम. २००७, लेखक के नाम पत्र)

"**अथर्ववेद की प्राचीनता**-यह पुस्तक मैंने आद्योपान्त पढ़ी है। इसके लेखक श्री शिवपूजनसिंहजी कुशवाहा 'पथिक' सिद्धान्त-शास्त्री, साहित्यालङ्कार हैं। इसमें आपने आर्यसमाज के सिद्धान्तों की पुष्टि योग्यता से की है। प्राच्य, प्रतीच्य विद्वानों के अशुद्ध विचारों का भरसक प्रयत्न से

निराकरण किया है। निस्सन्देह जिस ढङ्ग से आपने अथर्ववेद के महत्त्व को दर्शाया है वह प्रशंसनीय है। मेरे विचार से भ्रान्तियों के मिटाने के लिए प्रत्येक पठित व्यक्ति के हाथ में यह पुस्तक होनी चाहिए। अपने ढङ्ग की बहुत सराहना योग्य है"—(साप्ताहिक "आर्य जगत्" जालन्धर, भाग ११, संख्या १३, मई २१, सन् १९५० ई. पृष्ठ १२६ कॉलम ३-४)

"...लेखक महोदय ने अथर्ववेदको अर्वाचीन सिद्ध करने वाले विचारकों की आधार मूल युक्तियों का खण्डन किया है और उसकी प्राचीनता सिद्ध की है। मुख्य रूपसे लेखकने दो विचार धाराओं के परिहार करने का प्रयत्न किया है, जिससे अथर्व को अर्वाचीन सिद्ध किया जा सकता था। प्रथम विचारधारा यह है कि 'वेदत्रयी' नाम प्रसिद्ध होने के कारण वेद वस्तुतः तीन ही हैं, अथर्ववेद तो कोई वेद ही नहीं। दूसरी विचारधारा यह है कि क्योंकि अथर्व में मारण, उच्चाटण, अभिचार तथा जादू, टोने आदिका वर्णन है अतः यह वेद बहुत पीछे का सम्भवतः तन्त्रकालका बना है। इन दोनों विचारधाराओं की लेखक ने अनुसन्धान पूर्वक अच्छे परिश्रम से आलोचना की है। प्रतीत ऐसा होता है कि सम्भवतः लेखक ने इस विषय को ट्रैक्ट के रूप में प्रकाशित करना था अतः अधिक विस्तार से किए जानेवाले आक्षेपों का आलोचनापूर्वक निर्देश इस पुस्तक में नहीं किया जासका। दूसरे प्रकाशन में इसके प्रूफ की अशुद्धियाँ भी पूर्ण रूप से दूर कर दीजांयगी और पुस्तक का रूप अधिक आकर्षक किया जा सकेगा। पुस्तक सब वेद प्रेमियों तथा विशेषतः वेद के स्वाध्यायशील विद्वानों के लिए उपादेय है—" पं. सुखदेवजी 'विद्यावाचस्पति' (मासिक "गुरुकुल-पत्रिका" हरिद्वार, वर्ष २, श्रावण २००७ बि. अङ्क १२, पृष्ठ ३०-३१)